E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

बालश्रमिकों पर मानवाधिकार की सार्थक उपादेयत

[1] भास्कर भदौरिया

[1]शोधार्थी, समाजशास्त्र, महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड, विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

[2]डॉ. विनय प्रकाश गौड़

[2]प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, निवाड़ी (म.प्र.)

Paper Rcevied date

05/02/2025

Paper date Publishing Date

14/02/2025

DOI

https://doi.org/10.5281/zenodo.14911398

ABSTRACT

न्यायोचित सुख सुलभ नहीं
जब तक मानव–मानव को,
चैन कहाँ धरती को तब तक
शान्ति कहाँ इस भव को
जब तक मनुज–मनुज को यह
सुख भाग नहीं सम होगा
शामिल ना होगा कोलाहल
संघर्ष नहीं कम होगा।

रामधारी सिंह दिनकर की ये पंक्तियां आज भी प्रासांगिक हैं और तब तक प्रासंगिक रहेंगी जब तक समता और समानता के आदर्श चरितार्थ नहीं हो जाते और इस मानव समता और समानता के मार्ग में एक बड़ा अवरोध है 'बन्धुआ श्रम'। समाज के विकास में बालश्रमिकों का यह अवरोध केवल भारत में ही नहीं वरन् पूरे विष्व में व्याप्त है और समाज के अस्तित्व के साथ ही इसका जन्म हुआ है।

बालश्रमिक प्रथा ऋणदाता और ऋण प्राप्तकर्ता के बीच के सम्बन्धों को बतलाता है जो अपने दैनिक जीवन की आर्थिक अनिवार्यताओं को पूरा करने के लिए ऋण लेता है और ऋणदाता द्वारा प्रस्तुत शर्तों को स्वीकार कर लेता है। समझौते की प्रमुख शर्त यह होती है कि ऋण लेने वाला अपनी सेवाओं या अपने परिवार के सभी सदस्यों की सेवाओं को निश्चित या अनिश्चित समय के लिए 'बंधक' या गिरवी रखने को सहुमत हो जाता है। 1976 के बालश्रमिक उन्मूलन अधिनियम में बालश्रमिक प्रथा को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, ''बाध्य मजदूरी की वह प्रथा जिसके अन्तर्गत एक कर्ज लेने वाला ऋणदाता को अपनी सेवायें या परिवार के किसी अन्य सदस्य की सेवायें, जो उसका आश्रित हो अर्पित करता है।''

मुख्य विन्दु : बन्धुआ श्रम, समानता, अवरोध, अस्तित्व, ऋणदाता, प्राप्तकर्ता, अधिनियम

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

बालश्रमिक शब्द की परिभाषा 'श्रम पर राष्ट्रीय आयोग' द्वारा इस प्रकार दी गई है–''वह मजदूर को ऋण लेने के कारण किसी निश्चित समय के लिए बन्धक रहता है।" अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के आयुक्त ने अपनी 24वीं रिपोर्ट में बालश्रमिक की व्याख्या इस प्रकार की है वे व्यक्ति जो ऋण लेने के कारण अपने ऋणदाताओं के लिए या तो बिना पारिश्रमिक लिए या फिर मामूली पारिश्रमिक लेकर काम करने के लिए बाध्य हों। बालश्रमिक भारत में विभिन्त्र भागों में विभिन्न नामों से जाने जाते हैं. जैसे आन्ध्रप्रदेश और कर्नाटक में 'जीथम', गुजरात और मध्यप्रदेश में 'हाली', हैदराबाद में 'बघेला', राजस्थान में 'सागरी', बिहार में 'कमियां' या 'कम्योती', उड़ीसा में 'गोठी', तमिलनाडु में 'पाण्डियाल' केरल में 'आदिया', 'धानिया', 'कटुनेकेन' और उत्तरप्रदेश में 'कोल्टा' कहा जाता है।[प]

अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए दूसरे व्यक्ति को सदैव अपने बन्धन में रखने वाला व्यक्ति स्पष्ट रूप से मनुष्य के प्रति मनुष्य द्वारा की जाने वाले निर्दयतापूर्ण व्यवहार का द्योतक है। यह किसी विशेष क्षेत्र या देश तक सीमित नहीं है बल्कि सदियों से एक सार्वभौमिक सत्य के रूप में समाज के अस्तित्व में विद्यमान है। नाम, शैली, समय और स्थान के आधार पर अवश्य बदली हुई मिलती है। गुलाम, दास, कृषिदास और बालश्रमिक भारत में वर्षों तक इस प्रकार का मानव शोषण 'बेगार' या 'रयोट' के नाम से चलता रहा। 'बालश्रमिक' नाम हाल ही की उत्पत्ति है।

जमींदारी प्रथा के उन्मूलन, भूमि सुधारों, भूदान आन्दोलन कानून का लागू होना (1976 का बालश्रमिक उन्मूलन अधिनियम) पंचायती राज की स्थापना, सामाजिक कार्य, समूहों की इसमें रुचि का प्रदर्शन, उत्साही व्यक्तियों के उत्साह और यहाँ तक कि उच्चतम न्यायालय के आदेशों के बावजूद हम इस बुराई को अपने समाज से नहीं निकाल पाए हैं।[पप] लाखों की संख्या में बालश्रमिकों का वर्तमान में भी शोषण हो रहा है। वे कष्ट और कुण्ठा से भरे हुए आज भी उपेक्षा का बोझ लादे हुए हैं। वास्तव में भारतीय समाज में प्रचलित बालश्रमिक प्रथा समाज के सामन्तवादी अधिश्रेणित समाज का अवशेष है। गत दो–तीन दशकों से सामाजिक कार्यकर्ताओं, समाज वैज्ञानिकों और सरकार द्वारा बालश्रमिकों में काफी रुचि दर्शाई जा रही है क्योंकि यह प्रथा हमारे समाज के समानतावाद और मानव अधिकारों के आदर्शों के प्रतिकूल समझी जा रही है।

कार्ल मार्क्स ने प्रत्येक समाज में दो विरोधी वर्ग एक 'शोषक' और दूसरा 'शोषित' वर्ग होता है जिनमें संघर्ष होता है इसी को वर्ग–संघर्ष कहा गया है। मार्क्स के अनुसार वर्ग–संघर्ष एक ऐसा उत्पादन व्यवस्था से पैदा होता है जो समाज को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर देती है। इनमें से एक कठिन श्रम करके उत्पादन करता है जैसे दास, अर्द्ध दास, किसान, मजदूर आदि और दूसरा वर्ग उत्पादन के लिए बिना कोई परिश्रम किए बिना कोई काम किए, उत्पादन के बहुत बड़े भाग का उपयोग करता है जैसे दासों के मालिक, सामन्त, भू–स्वामी, पूंजीपति आदि।[पपप] मार्क्स के अनुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति ही शोषण की जड़ है और इसके कारण की मूल रूप में आर्थिक उत्पादन के प्रत्येक समाज में दो प्रमुख वर्ग होते हैं इनमें से एक वर्ग के हाथों में अधिक उत्पादन के समस्त साधन केन्द्रीकृत हो जाते हैं, जिनके बल पर वह शोषित और कमजोर वर्ग का शोषण करता आया है। इन वर्गों में समाज की अब तक की प्रत्येक अवस्था में (आदिम साम्यवाद को छोड़कर) निरन्तर संघर्ष चलता रहा है।[पअ]

कार्ल मार्क्स का दर्शन भी मानता है कि समाज के विकास का स्वरूप भी द्वन्द्वात्मक और भौतिकवादी है। मार्क्सवाद में समाज के विकास के वैज्ञानिक सिद्धान्त का निरूपण किया गया है जिसे ऐतिहासिक भौतिकवाद कहते हैं। ऐतिहासिक भौतिकवाद की

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

विषय वस्तु 'समाज और उसके विकास के नियमों' का अध्ययन करती है। मार्क्स के अनुसार सर्वसाधारण नर–नारियों की मेहनत मानव जाति के जीवन और प्रगति की अनिवार्य नींव है। मानव श्रम के बिना किसी भी प्रकार की व्यवस्था सम्भव नहीं हो सकती है। 'उत्पादन पद्धति' समाज के विकास में निर्णायक भूमिका अदा करती है। किसी भी उत्पादन पद्धति में श्रम के बिना, उत्पादक कार्य–कलाप के बिना मानव–जीवन असम्भव हो जायेगा। उत्पादन लोग समाज में संगठित होकर और मिलजुल कर सकते हैं। उत्पादन के लिए मनुष्य एक–दूसरे के साथ निश्चित संघर्ष और सम्बन्ध स्थापित करता है और इन सामाजिक सम्बन्धों के दायरे में प्रकृति पर उनकी क्रिया होती है और उत्पादन होता है। उत्पादन पद्धति तथा वितरण सामाजिक स्वरूप को निर्धारित करते हैं। इसलिए मार्क्सवाद उत्पादन के साधनों पर श्रमिक का स्वामित्व चाहता है। ऐसा करने से ही शोषण का अन्त किया जा सकता है।[अ] यदि पूंजीपतियों के हाथ में उत्पादन के साधन रहते हैं तो सदैव श्रमिकों का शोषण होगा।

राजशाही युग में चूंकि मानवीय आधार पर कोई विशेष कानून व्यवस्था नहीं थी। शासक के शब्द ही कानून होते थे, इसलिए निर्बल वर्गों को मानवीय आधारों से वंचित कर देना कोई आपत्तिजनक बात नहीं थी। बाद के सामंतशाही युग में जनता के भारी दबाव के कारण या उनके असंतोष को नियंत्रित रखने के लिए जो कानून बनाये भी गये उनमें भी शासक और शक्ति सम्पन्न वर्गों को मानव अधिकारों के उल्लंघन की काफी छूट मिली हुयी थी। शासक और स्वामी तब भी निर्णायक शक्ति बने रहे। दुनिया को मानवाधिकारों की रक्षा का ध्यान तब आया जब वह राजशाही, सामंतशाही अथवा साम्राज्यशाही व्यवस्था से मुक्त हो गयी। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों का पहला चार्टर सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ अस्तित्व में आया तो उसने मानव अधिकारों की रक्षा के लिए एक चार्टर तैयार किया। इस पर दुनिया के लगभग सभी देशों ने स्वीकृति की मोहर लगायी। चार्टर के अनुच्छेदों में दासता एवं गुलामी पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया है, इसमें कहा गया है कि आर्थिक दुर्बलता के कारण अथवा शक्ति का प्रयोग कर किसी व्यक्ति को गुलाम बनाना अपराध है। चार्टर में बड़े लोगों द्वारा कमजोर लोगों से बेगार लेने को भी आपराधिक दायरे में रखा गया है और घोषणा की गयी है कि बेगार प्रथा को पूर्णतया अवैध करार दे दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ–साथ सभी स्वतंत्र देशों ने अपने अलग–अलग संविधान तैयार किये। उनमें भी मनुष्य के मूल अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित की गयी।[अप]

1950 में जब भारत का संविधान बनाया गया इसमें धारा 23 को स्थापित किया गया जिसमें मानव व्यापार, बेगार और इसी प्रकार के बलात् श्रम का निषेध कर दिया गया परन्तु इस धारा को प्रभावी बनाने का कोई गम्भीरतम् प्रयत्न नहीं किया गया और इस प्रथा को उखाड़ फेंकने का रास्ता नहीं बन पाया। 1919 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा रहित बलात् श्रम उन्मूलन गोष्ठी का समर्थन नवम्बर 1954 में भारत द्वारा किया गया। भारत के कुछ राज्यों में बालश्रमिक के उन्मूलन के लिये कुछ कानून बनाये गये जैसे बिहार कामियान्ती अधिनियम, 1920 में पारित किया गया। मद्रास एजेन्सी ऋण बन्धन नियम 1940, मध्यप्रदेश के बस्तर में कबाड़ी प्रथा नियम 1943, हैदराबाद भगेला समझौता नियम, 1943, उड़ीसा ऋण बन्धन उन्मूलन कानून 1948, राजस्थान सागरी प्रथा उन्मूलन अधिनियम, 1961 और बालश्रमिक प्रथा उन्मूलन अधिनियम, 1975 में केरल में पारित किया गया। अक्टूबर 1975 में अध्यादेश जारी किया गया जिसको फरवरी, 1976 में एक अधिनियम पारित करके स्थानापन्न किया गया जिसे

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

बालश्रमिक व्यवस्था (उन्मूलन) अधिनियम कहा गया। 1976 में केन्द्रीय सरकार द्वारा इस कानून को बनाये जाने के बाद से सभी राज्यों के तत्सम्बन्धित कानून निष्प्रभावी हो गए।[अपप]

1976 अधिनियम के अन्तर्गत बालश्रमिकों का पता लगाया जाना, बालश्रमिकों की मुक्ति, अपराधियों के विरुद्ध कार्यवाही जैसे उन ऋणदाताओं के विरुद्ध जिन्होंने कर्जा लेने वालों को समझौते के लिए बाध्य किया। जिला और तहसील स्तरों पर सतर्कता समितियों की बैठकें करना, निर्धारित पंजिकाओं का रखना और मजिस्ट्रेट को न्यायिक अधिकार दिया जाना आदि शामिल हैं। यह अधिनियम बालश्रमिकों के पुनर्वास का भी उल्लेख करता है जिन्हें ऋणदाताओं से मुक्ति मिल गई हो। 1976 अधिनियम को 1985 में संशोधित किया गया जिसमें स्पष्ट किया गया था कि संविदा मजदूर या अन्तर्राज्यीय आव्रजक मजदूर ही बालश्रमिका समझे जायेंगे। यदि वे बालश्रमिक व्यवस्था उन्मूलन अधिनियम, 1976 की शर्तों को पूरा करते हों। 1976 के इस अधिनियम के क्रियान्वयन में मुख्य समस्या बालश्रमिकों की पहचान करने की है। तहसील एवं जिला स्तर पर प्रशासक अपने क्षेत्रों में बालश्रमिका होने की बात नहीं मानते हैं और न तो ऋणदाता यह स्वीकार करते हैं कि कोई भी बालश्रमिक उनकी सेवा में है और न ही कोई भी मजदूर यह कहने को तैयार होता है कि उनको लम्बे समय से बालश्रमिक के लिए बाध्य किया जा रहा है। गैर–राजनैतिक सामाजिक संगठन ही बालश्रमिकों की पहचान करने में सफल हो पाते हैं और उनके पुनर्वास हेतु प्रयास करते हैं।

उच्च्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती ने बालश्रमिक को 'परा–जीवधारी' सभ्यता से वनवासी, पशुओं से भी खराब जीवन जीने वाला कहा है, क्योंकि पशु कम से कम आजादी से कहीं भी घूम सकते हैं, भूख लगने पर कहीं भी मुंह मार सकते हैं झपट सकते हैं लेकिन समाज से बहिष्कृत ये लोग बन्धन में रखे जाते हैं और उनकी आजादी भी छीन ली जाती है।[अपपप] उन्हें या तो गन्दे स्थानों में या फिर खुले आकाश के नीचे रहना और जो कुछ मिल जाये उसी को खाकर सन्तुष्ट रहना पड़ता है, भले ही भोजन उनके भूखे पेट को पूरी तरह न भर पाये। कोई दूसरा विकल्प नहीं होने के कारण वे बन्धन के ऐसे अन्धकारपूर्ण गरीबी और भूख के गड्ढे में धकेल दिए जाते हैं जहाँ से उस निर्दयी, शोषक समाज में उन्हें बचाए जाने की कोई आशा नहीं रहती है।[पग]

अनुमान किया जाता है कि भारत में लगभग 32 लाख बन्धुआ मजदूर हैं। इनमें से 98 प्रतिशत ऋणग्रस्तता के कारण बन्धुआ बने और 2 प्रतिशत परम्परागत या सामाजिक दायित्व के रूप में। इनकी सर्वाधिक संख्या आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु तीनों राज्यों में हैं और फिर उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश में है। यह भी कहा गया है कि अधिकतर बालश्रमिक गाँवों में कृषि मजदूर के तौर पर कार्य करते हैं और या तो अनुसूचित जाति या जनजातीय समुदायों के होते हैं, 42 प्रतिशत किसानों की तरह काम करते हैं और 25 प्रतिशत कृषि श्रमिकों की तरह। अकुशल और असंगठित होने के कारण कृषि मजदूरों के पास अपने व्यक्तिगत श्रम के अतिरिक्त अपनी आजीविका चलाने के लिए कुछ भी नहीं होता। बन्धुआ कृषि मजदूर ग्रामीण समाज में सबसे निचले स्तर के होते हैं। गाँव का सामाजिक और आर्थिक स्तरीकरण भूमि और जाति से जुड़ा होता है जो कि लोगों के सामाजिक और आर्थिक स्तर पर नियंत्रण करता है।[ग] इस प्रकार बालश्रमिक दयनीय दशा में रहते हैं। इनका सामाजिक शोषण होता है क्योंकि सिद्धान्त रूप में उन्हें भोजन तथा कपड़ा, तम्बाकू मिलने का तो आष्वासन प्राप्त होता है लेकिन व्यवहार

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

में उन्हें परिवार में बचा हुआ भोजन और वस्त्र ही मिलता है। उनसे 12 से 14 घण्टे प्रतिदिन काम लिया जाता है और गाय भैंसों के तबेले में रहने को बाध्य होना पड़ता है। बीमार पड़ने पर अपने सेवा योजक की दया होने पर स्थानीय हकीम से दवाई मिल जाती है।

बालश्रमिकों के कष्टों की तस्वीर 1984 में श्रीलंका से आए कोड़ाईकेनाल जो कि तमिलनाडु में स्थित है, विस्थापित बालश्रमिकों की दशा का उदाहरण देकर पेश किया जा सकता है। बालश्रमिकों की दुर्दशा एक गम्भीर सामाजिक समस्या के रूप में जारी है और जनता, सरकार, न्यायपालिका, सामाजिक वैज्ञानिकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं सभी के लिए चिन्ता का विषय बनी हुई है। यदि 17 लाख अपराध प्रतिवर्ष जिनके लिए लगभग 26 लाख व्यक्तियों को आई.पी.सी. के तहत् गिरफ्तार किया जाता है। भारतीय समाज के लिए गम्भीर माने जाते हैं तो 30 लाख बालश्रमिकों की मुक्ति भी महत्त्वपूर्ण समस्या के रूप में देखी जानी चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि धन से सहायता करने वाले विभिन्न एजेन्सियों के द्वारा अनुसंधान प्रायोजित किए जायें ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि समस्या का विस्तार और लक्षण क्या है, पहचान में कठिनाइयों की जाँच हो सके, विविध पुनर्वास योजनाओं की क्या उपयोगिता है. केन्द्र, राज्य सरकारों और स्वैच्छिक संगठनों के बीच समन्वित क्रियाकलापों का बनाना, 1976 अधिनियम को संशोधित करने की आवश्यकता, सम्बन्धित अधिकारियों की जवाबदेही का निर्धारण किया जाना और मुक्त मजदूरों की उत्तररक्षा कार्यक्रमों का प्रारम्भ किया जाना सुनिश्चित किया जा सके। जब तक बालश्रमिकों को स्वार्थी तत्वों के शोषण से बचाने के गम्भीर प्रयास नहीं किए जाते तब तक यह समस्या समाज के लिए एक परेशानी का कारण बनी रहेगी। कानूनों के माध्यम से बन्धुआ, मजदूरी का सम्पूर्ण उन्मूलन भविष्य में सम्भव न भी हो, फ़िर भी विधान का सहारा न लेना उनकी दशा को और भी दयनीय बना सकता है।[गप] निर्धनता, अशिक्षा, बेरोजगारी जो बालश्रमिक के मूल कारण हैं, इनको समाप्त करना भी कोई आसान काम नहीं है। बालश्रमिकों के लिए भविष्य की योजनाएँ, कार्यक्रम और प्रोजेक्ट बनाने में विभिन्न स्तरों पर विस्तृत दृष्टिकोण और ठोस कार्यवाही की आवश्यकता होगी।

सन्दर्भ सूची

1. अष्विनी कान्त गौतम, ह्यूमन राइट्स एण्ड जस्टिस सिस्टम, ए.पी.एच., पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, दिल्ली 2001.
2. आहूजा राम, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1995.
3. बजवा, जी.एस., भारत में मानवाधिकार, क्रियान्वयन तथा उल्लंघन, अनमोल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1955.
4. गुप्ता सुभाष चन्द्र, कार्यशील एवं भारतीय समाज, अर्जुन पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2004.
5. जौहरी, जे.सी. ह्यूमन राइट्स एण्ड न्यू वर्ल्ड आर्डर टुवर्ड्स परफेक्शन ऑफ द डेमोक्रेटिक वे ऑफ लाइफ, अनमोल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1996.
6. कपूर, सुधीर, ह्यूमन राइट्स इन ट्वन्टी फर्स्ट सैन्चुरी, मंगलदीप पब्लिशर्स, जयपुर, 2001.

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

7. लोखाण्डे, जी.एस. भीमराव अम्बेडकरः ए स्टडी इन सोशल डेमोक्रेसी, इन्टैलेक्चयुल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1977.

8. महापात्रा, अरूण रे, नेशनल ह्यूमन राइट्स कमीशन ऑफ इण्डिया, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2001.

9. मित्रा, प्रमोद, ह्यूमन राइट्सः ग्लोबल इश्यूज, कल्पज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2000.

10. माधुर, कृष्ण मोहन, स्वातंत्र्योत्तर भारत में मानवाधिकार, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2000.

11. रत्नू, कृष्ण कुमार, भारतीय दलित और मानवाधिकार, बुक एन्कलेव, जयपुर, 2002.